राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

वर्ष 64 | अप्रैल-जून 2016 | अंक 2

रामाश्रम सत्संग, गाज़ियाबाद

विषय सूची

क्रमांक		पृष्ठ
1.	विनय *तुलसीदासजी*	01
2.	गीता की व्याख्या *लालाजी महाराज*	02
3.	ईश्वर की इच्छा में प्रसन्न रहें *महात्मा डा. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज*	09
4.	अनमोल वचन – साधन *महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज*	14
5.	दिनचर्या ही उपासना रूप बना लें *परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब*	18
6.	इब्राहिम आदम *प्राचीन मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र*	24

राम ॐ संदेश

संस्थापक

ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

संरक्षक

ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी

सम्पादक

डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

(सर्वोच्च आचार्य एवं अध्यक्ष)

वर्ष 64 अप्रैल–जून 2016 अंक–2

विनय

तुम सम दीनबन्धु, न दीन कोउ मो सम, सुनहु नृपति रघुराई।
मो सम कुटिल मौलिमनि नहिं जग, तुम सम हरि न हरन कुटिलाई।।
हौ मन–वचन–कर्म पातक–रत, तुम कृपालु पतितन–गतिदाई।
हौं अनाथ प्रभु तुम अनाथ–हित, चित यहि सुरति कबहूँ नहिं जाई।।
हौं सभीत तुम हरन सकल भय, कारन कवन कृपा बिसराई।।
तुम सुखधाम राम श्रम–भंजन, हौं अति दुखित त्रिविध श्रम पाई।
यह जिय जानि दास तुलसी कहँ राखहु सरन समुझि प्रभुताई।।

परमसंत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज

श्रीमद्भगवद्गीता की व्याख्या

प्रस्तावना

परम पूज्य लालाजी महाराज की आध्यात्मिक शिक्षा सर्व धर्म मान्य प्रणाली है। उनका कहना था कि हम सब परम पिता परमेश्वर का अंश हैं और दयाल देश से आये हैं। इस जीवन में हमारा कर्त्तव्य है कि जन्म जन्मांतर से आत्मा के ऊपर जो आवरण ढके हुए हैं उनसे आत्मा को मुक्त कराना है और वापिस दयाल देश को लौटना है। सूफियों में माना जाता है कि सुरत शब्द योग का अभ्यास ही एकमात्र ऐसा साधन है जो हमें अपने अंतिम लक्ष्य अर्थात् मोक्ष तक पहुँचाता है।

महात्मा जी ने फरमाया है कि कोई भी व्यक्ति भौतिक रूप से अपने धर्म (हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई) का सुचारू रूप से पालन करते हुए भी इस शिक्षा प्रणाली को अपनाकर अपना जीवन सफल बना सकता है। इसी के साथ यह भी विचार आता है कि आखिर इस शिक्षा प्रणाली का आदि स्रोत क्या है? महात्माजी ने फरमाया था कि श्रीमद्भागवत् गीता एक राजयोग का ग्रन्थ है और इस पर किसी एक धर्म का अधिकार नहीं है। यह प्रत्येक मानव के जीवन का दर्पण है। मनुष्य जब मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार से जूझता हुआ थक जाता है तब ईश्वर (भगवान श्रीकृष्ण) इस द्वन्द से बाहर निकलने का साधन बताते हैं। हर मानव के जीवन का उद्देश्य ईश्वर प्राप्ति ही है परन्तु यह इतना आसान नहीं है। सोलह कला के अवतार श्रीकृष्ण ने मानव को भगवत्गीता द्वारा निष्काम कर्म, ध्यान, जाप, निरन्तर चिन्तन, समर्पण और आचरण परिवर्तन का ज्ञान दिया है।

श्रीकृष्ण ने 'मानव जीवन' को एक रथ का सम्बोधन दिया है। इसी पर हम अपने जीवन की सम्पूर्ण यात्रा करते हैं। जीवन पर्यन्त हम अपने बाह्य और आन्तरिक द्वन्दों से मुक्त नहीं हो पाते हैं। 'श्रीकृष्ण' ने एक

गुरु का व्यवहार किया है और अर्जुन हम सबका प्रतिनिधि है जो गुरु की शरण में होते हुए भी 'राजयोगी' है।

इसी सन्दर्भ में महात्माजी के मुराद शिष्य और हमारे गुरुदेव परम सन्त डा. श्रीकृष्णलाल जी महाराज ने अपने एक प्रवचन में भगवत्गीता का विश्लेषण सन्तों द्वारा उसके आध्यात्मिक point of view को सामने रखकर समझाया है। उनके मुखारविन्द से निकले कुछ अनमोल वचन– जो इस प्रकार हैं आपके समक्ष प्रस्तुत है।

गुरुदेव परम संत डा. श्रीकृष्णलाल जी महाराज ने अपने प्रवचन में भगवत्गीता के संबन्ध में कहा है–''महाभारत क्या है?'' पांडव अच्छी आदतें, कौरव बुरी आदतें और दोनों किसके हैं? वे एक ही के हैं औलाद! एक का राजा कौन है?– अंधा मन, वो जानता सब कुछ है लेकिन मानता नहीं है इस वास्ते वह अंधा धृतराष्ट्र है, हाँ हाँ करता रहेगा लेकिन तरफदारी करेगा दुर्योधन की। दुर्योधन क्या है –अभिमान (ego) और बाकी जितने भाई हैं, वो सब उसके साथी हैं। और पाँचों पांडव जो हैं वो right चीज़ हैं। तो गुरु साथ देता है पांडवों का यानी right चीज़ का और साथ देकर जितनी बुराईयाँ हैं सबको ख़त्म करा देता है, यही कृष्ण है। रथवान यह जिस्म है, इसको चलाने वाला कौन है? – गुरु है। तो अर्जुन पहले तो वह लड़ने को तैयार नहीं होता, लेकिन जब वो उसको तैयार करते हैं तो फिर उसको lead करके और एक–एक करके सबको हरा देते हैं। अनेकों ख़्वाहिशात जो बड़े–बड़े योद्धा हैं, लेकिन किसी न किसी तरह से कृष्ण भगवान ने एक–एक करके सबको खत्म कराया है और कहाँ ले गये – सत् पर और सत् का राज कराया है। हजारों ख़्वाहिशात हैं, एक को ख़त्म करो, दो और पैदा हो जाती हैं। हृदय के तीर से मारो और ख़्वाहिशात का ख़ातमा करो, मन तभी मरेगा वरना मरेगा नहीं। संत जिस तरीके से लेते हैं, रामायण को, महाभारत को – वो आध्यात्मिक point of view से लेते हैं।''

हमारे गुरुदेव परम सन्त डा. करतार सिंह जी ने भी इसी प्रकार अपने जीवनकाल में बार–बार अपने प्रवचनों में हमें भगवत्गीता के बारवहें अध्याय के 13–20 श्लोकों का अध्ययन नित्य प्रति करने और

उन्हें समझ कर अपने जीवन में उतारने का प्रयास करने का आदेश दिया था।

शायद इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए भगवत्गीता के सात सौ श्लोकों में से 108 श्लोकों का बहुत ही ध्यानपूर्वक चयन किया गया है, जिनमें महात्माजी की आध्यात्मिक शिक्षा का महान पवित्र ग्रंथ भगवतगीता में पूर्ण समावेश मिलता है। इन श्लोकों की विवेचना श्री विनोद बिहारी लाल जी फतेहगढ़ वाले द्वारा बहुत ही सरल भाषा में की गई है। यह हमारे लिए अत्यन्त प्रेरणादायक हैं, जिससे हमें लाला जी महाराज के द्वारा दिखाये गये मार्ग को समझने और उसका अनुसरण करने में सहायता मिलती है।

गुरूदेव डॉ. करतार सिंह जी साहब ने भी कई बार अपने प्रवचनों में हम सब के लिये प्रार्थना की है, उन्हीं के शब्दों में – ''हे कृपा निधान! हे दया के दाते! आप ही अपनी कृपा कीजिये, हम से अपने आप कुछ नहीं बन पायेगा, बिना आपकी दया के हम कुछ नहीं कर सकते''। मेरी गुरूदेव के चरणों में प्रार्थना है कि वे ही अपनी कृपा द्वारा इस गूढ़ विषय को समझने की हम सब को शक्ति प्रदान करें ताकि यदि हो सके तो हम इसे समझ कर अपने जीवन को सार्थक बनाने का प्रयास करें।

– सम्पादक

गीता के प्रथम अध्याय के 24वें श्लोक पर ध्यान दें–

1

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम्। 1।24।

अर्थः– श्रीकृष्ण ने दोनों सेनाओं के बीच में भीष्म और द्रोणाचार्य के सामने उत्तम रथ को खड़ा कर दिया है और कहा युद्ध में जुटे इन कौरवों को देख।

भावार्थः– अपने जीवन को (रथ को) सत् (पांडव) और (कौरव) के मध्य रखकर सही ग़लत के समर्थ ज्ञान का नाम ही गीता है।

2

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याजनार्दन।
पापमे वाश्रये दस्मान्हत्वै तानाततायिनः। 1।36।

अर्थः– हे जनार्दन! धृतराष्ट्र के इन पुत्रों को मारने से क्या सुख मिलेगा। हमें तो इन दुष्टों को मारने से पाप ही लगेगा।

भावार्थः– गुरु के समझाने के बाद भी मनुष्य अपने हर निर्णय को मन से तोलता है क्योंकि वह शुभ–अशुभ, लाभ–हानि, के द्वन्द में फँसा रहता है। उसके मन पर रूढ़ीवादिता का अक्स रहता है।

3

नचैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वाः नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषामः
तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः। **2।6।**

अर्थः– जिन धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारकर हम जीना भी नहीं चाहते और उनको सम्मुख देखकर यह समझ भी नहीं आता कि वे जीतेंगे या हम। यह भी विचार आता है कि श्रेष्ठ कौन है।

भावार्थः– फिर वही द्वन्द और उद्विग्नता, यह सब मन के ही रूप हैं। सामने 'गुरु' खड़े हैं परन्तु मन हावी है बुद्धि पर। गुरु की बात पर सन्देह! यही हम सबकी अवस्था है।

4

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत। **2।18।**

अर्थः– नाशरहित, अप्रमेय, नित्य स्वरूप जीवात्मा के यह (दिखने वाले) सब शरीर नाशवान हैं। अतः अर्जुन तुम युद्ध करो।

भावार्थः– भगवान यह बताकर कर्म करने को प्रेरित कर रहे हैं कि केवल शरीर नश्वर है, आत्मा अमर है। हमें जो दिख रहा है वह शरीर है और उसी से हमारा मोह है। अतः अपने कर्म में लगे रहो।

5

वसांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृहणाति नरोऽपराणि।
तथा शरीर विहाय जीर्णानि,
अन्यानि संयाति नवानि देही। **2।22।**

अर्थः– जैसे पुराने कपड़े को त्यागकर मनुष्य नये कपड़े ग्रहण करते हैं, वैसे ही पुराने शरीरों को त्यागकर जीवात्मा नया शरीर धारण करती है। यानि पुर्नजन्म होता है।

भावार्थः– जैसे दाग छुड़ाने पर भी न छूटने पर या पुराने हो जाने पर वस्त्र ही त्याग कर देते हैं उसी प्रकार पाप की वृत्ति छुड़ाने पर भी न छूटने पर पापी को ही समाप्त करना पड़ता है। इसीलिए महाभारत हुई। परन्तु उसके धारक जीवात्मा का कुछ नहीं बिगड़ता। आत्मा के पुनः प्रवेश के समय उसके साथ प्राणमय (इन्द्रियों का), मनोमय (मन का) तथा विज्ञानमय (बुद्धि) से मिलकर बना हुआ सूक्ष्म शरीर साथ जाता है।

6

अवाच्यावादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम्। **2।36।**

अर्थः– भगवान ने कहा – तुम्हारे वैरी लोग भी अनेक अपशब्दों द्वारा तुम्हारे सामर्थ्य की निन्दा करेंगे उससे अधिक दुःख और क्या होगा।

भावार्थः– मनुष्य को समाज के साथ चलना है। सुनने में वाणी के तीर से अधिक क्या घातक होगा। समाज में ठीक चलना ही उचित कर्मो का प्रणेता है।

7

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः। **2।37।**

अर्थः– श्रीकृष्ण ने कहा कि मृत्यु प्राप्त होगी तो स्वर्ग मिलेगा और जीत गये तो पृथ्वी का राज भोगोगे। अतः दृढ़ निश्चय करके उठो और युद्ध करो।

भावार्थः– भगवान कृष्ण ने पूर्ण व्यवहारिक रूप से दोनों प्रकार के अंतिम निर्णय बताये (हालांकि विजय की भविष्यवाणी आगे श्लोक 11/33 में कर भी दी)। अतः मनुष्य को अधिक से अधिक क्या होगा, उसको स्वीकार करने के लिए मानसिक रूप से तैयार होना चाहिए।

8

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि। **2।38।**

अर्थः– हार–जीत, सुख–दुःख, लाभ–हानि दोनों को समान समझ कर युद्ध करने से (कर्म में लगने से) पाप को प्राप्त नहीं होते।

भावार्थः– कर्म को प्रभु की इच्छा मानकर (निष्काम भाव से) केवल कर्म के लिए करने भर से पाप पुण्य के भागी नहीं होते हैं।

9

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि। 2। 47।

अर्थः– तुम्हारा कर्म करने में अधिकार है। उससे क्या फल मिलेगा इसमें नहीं है। अतः कर्म के फल हेतु कर्म न करो। कर्म न करने में भी आसक्ति न रहे।

भावार्थः– कर्म का क्या फल होगा इस पर अपना कोई वश नहीं है। कर्म को किसी फल के लिए सिर्फ परमात्मा ही करता है, मनुष्य नहीं कर सकता। जैसे युद्ध में किन वीरों की मृत्यु होनी निश्चित है यह भगवान (11/34) पहले ही बता चुके थे। कर्म का फल और कर्म का उद्देश्य अलग–अलग है इनको आपस में उलझा कर यदि कर्म ही न करें तो सब गलत हो जायेगा।

10

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते। 2। 55।

अर्थः– जब मनुष्य मन में उठी सारी कामनाओं को त्यागकर आत्मा से आत्मा में ही संतुष्ट हो जाता है तो उसे स्थितप्रज्ञ कहते हैं।

भावार्थः– आत्मा का आत्मा में संतुष्ट होना पूर्ण रूप से आत्मिक हो जाना है (जहाँ मन, चित्त, बुद्धि, अहं के मिटने पर केवल आत्मा रूप रह जाता है)। यही स्थितप्रज्ञ होना कहलाता है।

11

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति। 2। 63।

अर्थः– क्रोध से मोह होता है और मोह से स्मरण शक्ति भ्रमित हो जाती है। उससे बुद्धि का नाश और पतन होता है।

भावार्थः– यह सत्य है कि स्वयं का विनाश विषयों की कामना से होता है क्योंकि उससे क्रोध उत्पन्न होता है, और क्रोध से मोह और मोह से स्मरण शक्ति और फिर बुद्धि का नाश हो जाता है।

12

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः। 2। 66।

अर्थः– जब सब रात्रि को सोते हैं तो आत्मसंयमी व्यक्ति जागता है। और जब दिन में सब जागते हैं तो वह सोता है।

भावार्थः– आत्मसंयमी व्यक्ति रात्रि में निरंतर जाप, ध्यान और चिंतन करता रहता है। अतः यह प्रभु की याद में जागना हुआ। दिन में बाकी सब काम करने पड़ते हैं, इसलिए साधना उतनी तीव्र नहीं हो पाती। अतः यह प्रभु की याद में नींद के समान है। यह योग की बड़ी सुन्दर किन्तु ऊँची अवस्था है।

13

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।। 3। 8।

अर्थः– तुम शास्त्रानुसार उचित कर्म को करो। क्योंकि कर्म न करने से शरीर यात्रा नहीं चल सकती। अतः कर्म करना ही श्रेष्ठ है।

भावार्थः– भगवान कर्म करने को उसी प्रकार जीने के लिए आवश्यक बताते हैं जैसे बग़ैर कर्म किये सिंह के मुँह में स्वयं मृग नहीं आ जाता और बग़ैर हाथ चलाये थाली का खाना अपने आप मुँह में नहीं आता। इसीलिए दुनियाँ में जो कर्म हमें जीवन निर्वाह के लिए या आत्मिक उत्थान कि लिए जैसे ध्यान, जाप, स्मरण, आचरण परिवर्तन हैं वो करने ही पड़ेंगे। उन्हें गुरु या भगवान पर नहीं छोड़ सकते कि वे ही सब करेंगे। ईश्वर की याद में किये गये कर्म श्रेष्ठ हैं। ❑

यदि किसी के चिंतन और आचरण में सत्यता विद्यमान है तो उसका मानव जीवन निश्चय ही धन्य होने जा रहा है।

–भगवान बुद्ध

प्रवचन गुरुदेवः डा.श्रीकृष्ण लालजी महाराज

ईश्वर से क्या माँगे और क्या न माँगें। ईश्वर की इच्छा में प्रसन्न रहें।

(1)

वादये वस्ल चूँ शबद नज़दीक।
आतिशे शौक़ तेज़ तर गरदद।।

जितनी माशूक (प्रियतम) से मिलने की घड़ी नज़दीक आती जाती है, उतना ही मिलने का शौक तेज़ होता जाता है। यानी जितनी मौत की घड़ी नज़दीक आती जाती है, उतना ही आनन्द आता जाता है और बड़ी ख़ुशी होती है कि कब मरूँ और कब प्रियतम में समा जाऊँ। मगर यह किसकी हालत है? जिसने अपनी आत्मा को ईश्वर में मिला दिया है और दुनियाँ भोग रहा है, बुद्धि से। Attachment (लगाव) उसका ईश्वर से है। वह अपने संस्कार भी भोग लेता है और परमार्थ भी उसका बन जाता है। मरते वक्त रोता हुआ नहीं जाता और फिर यहाँ वापिस भी नहीं आता क्योंकि यहाँ उसका किसी से लगाव ही नहीं है।

अपने स्थूल शरीर पर जो दुख-सुख का अनुभव होता है, वह अपनी सुरत (Attention) के द्वारा होता है। चोट लगी, बड़ा दुख हुआ। लेकिन यदि आपको सुरत का अभ्यास आता है, यानी आपने अपनी सुरत को नीचे से ऊपर ले जाने का अभ्यास कर रखा है तो आप उस समय mental plane (मन के स्थान) पर आ जाइए, यानी physical plane (स्थूल शरीर) से ऊपर उठा लीजिये तो वह कष्ट अनुभव नहीं होगा। इसे करके देख लीजिये।

इसको यूँ समझ लीजिये कि आपको जिस चीज़ में आनन्द मिलता है, जैसे ताश, शतरंज या आपके किसी दोस्त की सोहबत, उसमें अपनी attention (सुरत) को जोड़ दीजिये। जब आपका ध्यान पूरी तरह से उस खेल में या उस दोस्त में लग जायेगा तो चोट का दर्द नहीं मालूम होगा या बहुत कम मालूम होगा। दर्द कहाँ मालूम होता है जहाँ आपका

attention होता है। इसी तरह अगर आपको कोई सदमा पहुँचा है यानी कोई दोस्त या कोई सगा सम्बन्धी मर गया है या कोई mental shock (मानसिक आघात) पहुँचा है तो उसे हटाने के लिए जो अभ्यास आपने सत्संग में सीखा है, उसके द्वारा अपनी सुरत को spiritual plane (आत्मा के स्थान) पर ले आइये। Spiritual plane में दुख नहीं होगा और होगा भी तो बहुत हल्का सा होगा। तो कर्म तो भोगा, जैसा हमने किया वैसा हमें मिला, लेकिन बेमालूम।

तो जो दरअसल ऊँचे अभ्यासी हैं वे कष्ट भोगते हैं लेकिन उसका अनुभव अपने शरीर और मन पर उतना नहीं होने देते जितना साधारण मनुष्य को होता है। हमारे ही यहाँ एक सज्जन ऊँचे अभ्यासी थे जिनका किसी चीज़ का आपरेशन होने को था। उनको chloroform (बेहोश होने की दवा) दी जाने लगी तो उन्होंने डाक्टरों से कहा कि साहब आप मुझे बेहोशी की दवा मत दीजिए। मैं थोड़ी देर concentrate कर लूँ (सुरत को एकाग्र करके ऊपर चढ़ा लूँ) और जब मेरे शरीर में अमुक लक्षण पैदा हो जाएं तब मेरा ऑपरेशन कर दीजिए। तो वे अपनी सुरत को mental plane (मन का निचला स्थान जहाँ पर शारीरिक कष्ट का अनुभव होता है) से ऊँचा उठा कर spiritual plane (आत्मा के स्थान) पर ले गये। यानी अपनी सुरत को आत्मा में जोड़ दिया। जब डाक्टरों ने उनके बताये लक्षण शरीर में प्रकट देखे तो उनका ऑपरेशन कर दिया और उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ।

यह नित प्रति की बातों में भी अनुभव होता है। हमें स्वयं इस बात का कई बार अनुभव हुआ है। मोटर से उतरे हैं और पैर में कोई लोहे का टुकड़ा चुभ गया। कुछ ऐसा लगा कि चीटीं सी चल रही है। घर जाकर देखा तो खाल फट गई थी और खून बह रहा था। जहाँ दर्द हुआ वहाँ अपनी attention को गुरुदेव के चरणों में, ईश्वर के चरणों में लगा दिया, दर्द महसूस भी नहीं हुआ। तो क्या दर्द चला गया, नहीं दर्द तो दर्द की जगह ही रहा लेकिन जिस चीज़ के द्वारा वह अनुभव हो रहा था उसे उस जगह से हटा कर मन के स्थान पर ले गये और वहाँ से और ऊपर उठाकर आत्मा के स्थान पर ले गये।

इसी तरह के अभ्यास से मनुष्य दुनियाँ के दुखों से भी बच जाता

है। Life is all happiness, चाहे वह शारीरिक कष्ट हों या मानसिक कष्ट, इस अभ्यास के द्वारा वह दुखी और विचलित नहीं होता।

हमारे जो पिछले कर्म हैं उनमें से कुछ हिस्सा हमें इस जीवन में मिलता है, वही जिम (तकदीर) कहलाता है। उसे हम यहाँ भोगते हैं और शेष जो रह जाते हैं, उन्हें संचित कर्म कहते हैं जो हमें भविष्य में भुगतने हैं, क्योंकि एक ही जीवन में हमारे सब के सब पिछले कर्म कट नहीं पाते। जितने कर्म कटने हैं उतने कट जाते हैं, शेष अगले जन्मों के लिए रह जाते हैं। कोई सन्त मिल जाये और मेहरबान हो जाये तो उसकी दुआ से कर्म का भार हल्का हो जाता है और आसानी से कट जाता है।

हम सब दुनियाँ में फँसे हुए हैं इसलिए इस हालत में जो दुआ की जाती है उसका ज़्यादा असर नहीं होता। इस तरह से यानी दुनियाँ से अपने मन को साफ़ करके जो दुआ की जाती है उसका असर ज़्यादा होता है। जो लोग इन्द्रियों में फँसे हैं और दिखाने के लिए ईश्वर से दुआ कर रहे हैं तो उस दुआ का असर ज़्यादा नहीं होता।

दूसरी बात यह है कि जिन चीजों के लिए हम दुआ कर रहे हैं, वे चीजें दुनियाँ के पदार्थ हैं तो वे आपको उतने ही मिलेंगे जितनी आपके पिछले जीवन की कमाई है। इससे ज़्यादा नहीं मिलेंगे। और अगर ईश्वर की दया उमड़े भी और वे चीजें जो आप चाहते हैं, आपको मिल जाएँ (जैसे धन–दौलत, किसी साँसारिक व्यक्ति का प्रेम, कीर्ति इत्यादि) तो क्या यह आपके ऊपर ईश्वर की कृपा होगी या उसका आपके साथ में जुल्म होगा? क्योंकि जितनी दुनियाँ की चीजें वह आपको बख़्शता है उतनी ही आपकी इच्छायें मोटी होती जाती हैं, उतना ज़्यादा आप उनमें फँसते जाते हैं। फिर एक इच्छा के बाद दूसरी इच्छाओं का अंबार लग जाता है। मन कहता है कि ''यह और मिल जाए''। इस तरह से तो आपका कभी भी छुटकारा नहीं होगा। तो ईश्वर ऐसी दुआ को कभी नहीं सुनता। हाँ, जब आप अपनी दुनियाँवी निचली इच्छाओं को छोड़कर ऊँची दुआ करते हैं, उसके प्रेम के लिए तब वह उसको सुनता है। आपकी जो कठनाईयाँ और मुश्किलें उसके रास्ते में होती हैं, उन्हें वह दूर कर देता है।

वह तो दयालु बाप है। जैसे कोई माँ है, उसका बच्चा अनजान है और वह चाकू माँगता है, छुरी माँगता है तो क्या वह छुरी दे देगी उसको?

वह जानती है कि इससे वह काट लेगा। लेकिन अगर वह मिठाई के लिये जिद करता है तो वह उसे खाने के लिए दे देती है। ईश्वर तो सच्चा बाप है और ऐसा प्यारा बाप है कि अगर उससे आप ऐसी चीज़ें माँगें जिनसे आपका भविष्य खराब हो तो वह आपको नहीं देगा। हम अज्ञान में फँसे हुए हैं। यह नहीं जानते कि हमारा भविष्य किस तरह सुखमय होगा। जो चीज़ हमको अच्छी लगती है, चाहे उससे हमारा भविष्य बिल्कुल सत्यानाश हो जाये, हम उसी की इच्छा करते हैं। गुरु कृपा और सत्संग से जब बुद्धि शुद्ध होने लगती है और होश आने लगता है यानी अज्ञान दूर होने लगता है तब पछताता है कि हाय! मैं कैसी बुरी हालत में था। तब वह खुद ही सोचने लगता है कि मैं जो चीज़ भगवान से माँग रहा था उससे तो मेरा कितना नुकसान हो जाता, अच्छा हुआ जो वह चीज़ मुझे नहीं मिली।

ईश्वर सब जानता है कि हमारे पिछले कर्म कैसे हैं और आगे के लिए वह हमें क्या दे जिससे हमारी हानि भी न हो और भविष्य उज्जवल हो। इसी वास्ते सन्त कहते हैं कि तुम्हारी जो बुद्धि है वह मलिन बुद्धि है। तुम जिस चीज़ में फँसे हो उसी में अपना फ़ायदा समझते हो हालांकि वह तुम्हें नुकसान देने वाली है। ईश्वर इसको खूब समझता है वह ऐसी कार्यवाही करता है जिसके करने से, और उसने हमें ऐसी जगह रखा है जहाँ रहने से, हमारे पिछले संस्कार भी कट जायें और आगे को हमारा भविष्य better (अच्छा) होता चला जाय। अच्छा होना यह है कि हमें सुख के धाम की तरफ जहाँ आनन्द ही आनन्द है, उस तरफ़ हमारा रुख (झुकाव) हो जाये और हम उस रास्ते पर चलने लगें। उसने हमें ऐसी जगह रखा है और ऐसी चीज़ें दी हैं जिसमें हमारा फ़ायदा है। इसीलिए सन्त कहते हैं कि जिस हालत में भी ईश्वर ने रखा है उसी में cooperate (सहयोग) करो। (यथालाभ सन्तोष, राज़ी–ब–रज़ा)। इसी में तुम्हारा सबसे ज़्यादा फ़ायदा है। जब मनुष्य की यह धारणा बन जाती है तो उसे peace of mind (मन की शान्ति) मिलने लगती है।

2

आप दुनियाँ को नहीं बदल सकते। दुनियाँ में तो आपके पिछले संस्कारों के मुताबिक चीज़ें मिलेंगी। जो सज़ा है वह भी आपको मिलेगी। जो आपके लड़के–बाले रिश्तेदार वगैरा हैं, सब अपनी–अपनी तक़दीर

और अपने-अपने संस्कार भोग रहे हैं। हमें परेशानी इसलिए होती है कि हमें ईश्वर ने जिन circumstances (हालात) में रखा है उसको oppose (विरोध) करते हैं और उसको curse करते हैं (दोष देते हैं) कि हमको ऐसी हालत में रखा है। दूसरी बात यह है कि हम संसार और हमारे रिश्तेदारों, लड़कों वग़ैरा के जीवन को अपनी इच्छा के अनुसार बदलना चाहते हैं। आप देखेंगे कि आप अपने लड़के को किसी विशेष department (विभाग) में नौकरी दिलाना चाहते थे और वह प्रयत्न आपके असफल रहे और बाद में वह किसी और विभाग में गया तो आप ग़ौर करके देखेंगे तो यह पायेंगे कि इसका भला इसी में था, जहाँ आप चाहते थे वहाँ नहीं। लेकिन आप यह समझते हैं कि हमारे से ज़्यादा बुद्धि किसी की नहीं है, यहाँ तक कि ईश्वर, जिसने हमें बनाया है, और इस संसार में रखा है, उसे भी हम criticise (आलोचना) करते हैं। अपने को उससे ज़्यादा अक़्लमन्द समझते हैं। ऐसा तो नामुमकिन है, ऐसा तो हो ही नहीं सकता। इसी वास्ते हम miserable (दुर्दशा में) हैं, अगर हम उससे cooperate करने लगें और जिस हाल में उसने रखा है उसी में ख़ुश रहें और यह समझें कि दरअसल वह हमारा सच्चा बाप है, इसी में हमारी भलाई है।

पहली चीज़ यह है कि ईश्वर है और अवश्य है, दूसरी यह कि हम यह समझें कि दरअसल वह हमारा सच्चा बाप है, सबसे प्यारा है, वह सबसे ज़्यादा अक़्लमंद है, वह वे सब काम कर रहा है जिसमें हमारा हित ही हित है। यदि आपको यह निश्चय हो जायेगा तो जिन circumstances में उसने आपको रखा है उसमें आप ख़ुश रहेंगे और peace of mind मिलेगी। जब मन की शान्ति मिलेगी तभी आपका मन अभ्यास में ऊपर की तरफ़ चलेगा। जिस वातावरण में हम इस समय रह रहे हैं अगर हम उसी में फँसे रहेंगे तो कभी भी इस माया जाल से नहीं निकल सकते। इसलिए जो सत्संगी भाई तरक्की करना चाहते हैं उनको यह चाहिए कि जिस हालत में भी ईश्वर ने रखा है उसी में ख़ुश रहें।

(सन्त वचन- भाग 7 से लिया गया।)

(शेष अगले अंक में)

❑

परमसंत डा.श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के अनमोल वचन

साधन

गुरु का बताया हुआ अभ्यास और गुरु का सत्संग करना चाहिए। इससे धीरे–धीरे (अभ्यासी) निचली वासनाओं को छोड़ता चलता है। तम से रज, रज से सत् पर आ जाता है। गुरु के संग और सत्संग से आत्मा को शक्ति मिलती है जिससे अन्दर से दुनियाँ से छूटने के लिए बेचैनी होती है, यही सुरत का जगाना है। फिर वह मन के फंदे से निकलने के लिए प्रयत्न करती है, रोती बिलखती है और परमात्मा से मदद माँगती है। परमात्मा की अथाह कृपा की लहरें उमड़ती हैं और मनुष्य रूप में गुरु रूप होकर उसकी मदद करती हैं जिससे आत्मा मन के फँदे से स्वतंत्र हो जाती है और ईश्वर का प्रेम चमकने लगता है। दिल में एक दर्द बना रहता है जो उसको अपनी असल की ओर खींचता है, चाल को तेज़ कर देता है, रास्ता तय होने लगता है और आत्मा अपने यानी परमात्मा से, प्रियतम से मिलकर एक हो जाती है। यही निर्वाण पद है। यह हालत ज़िन्दगी में ही होती है क्योंकि ज़िन्दगी कुरुक्षेत्र है। मौत के बाद भोगयोनि है। जो कुछ करना है वह इसी ज़िन्दगी में करना है और अभी करना है।

❖❖❖❖

तुम आत्मा हो, मन नहीं हो। आत्मा सर्वशक्तिमान है क्योंकि वह उस परमपिता परमेश्वर की अंश है जो समस्त शक्तियों का भंडार है, मन के कहने में मत चलो। जो मन के अनुसार काम करता है वह भँवर में फँसे हुए या दलदल में फँसे हुए मनुष्य की तरह है। स्वयं बाहर नहीं निकल सकता। कोशिश करो, मेहनत करो, किन्तु सहारा परमात्मा का या गुरु का लो। बिना सहारा लिए काम नहीं बनेगा। कोशिश करो यह पहली शर्त है। गुरु और मालिक को पुकारो और मदद माँगो, यह दूसरी

शर्त है। जिस बच्चे को गोद में लिए रहोगे वह निकम्मा हो जायेगा, परिश्रमी नहीं बनेगा और जीवन में कभी सफल नहीं बनेगा। बच्चा वही सफल होगा जो स्वयं हाथ–पाँव मारे। जो मनुष्य अभ्यास नहीं करेगा उसे सफलता नहीं मिल सकती।

❖ ❖ ❖ ❖

तीन चीज़ें हैः–

1) खूब कोशिश करो।

2) खूब प्रार्थना करो परमात्मा से, गुरु से, जिसका तुमने सहारा लिया है। ख़्याली तौर पर पैर पकड़ लो, रोओ, गिड़गिड़ाओ और शक्ति माँगो।

3) यह ख़्याल भी मत करो कि नाकामयाबी (असफलता) होगी। अगर कोई बुरी आदत छुड़ानी हो और कोशिश करने, प्रार्थना करने और मदद माँगने से भी न जाती हो तो उदास न हों, निराश न हों। इसकी ज़िम्मेदारी (उत्तरदायित्व) तुम्हारे ऊपर नहीं है। सोच लो कि इसी में उसकी ख़ुशी है। कर्म करना तुम्हारा काम है, वह करो। फल की इच्छा रखना तुम्हारा काम नहीं है।

❖ ❖ ❖ ❖

प्रेम से पहुँचता है। कसब (अभ्यास) से ठहरता है।

❖ ❖ ❖ ❖

अच्छाई बुराई एक ही तस्वीर के दो पहलू है। काम तो नेक करो लेकिन अपने आपको उसका कर्ता मत समझो। स्वभाव ही ऐसा बन जाये कि काम ख़ुद–ब–ख़ुद नेक (शुभ) होने लगें। जहाँ बुराई का काम करने से बुरा संस्कार बनता है, वहाँ अच्छाई का काम करने से अच्छा संस्कार बनता है, दोनों ही में बन्धन है। बुरे को बुरा भोगना पड़ेगा और अच्छे को अच्छा। मोक्ष कहाँ हुई ? इसलिए अच्छाई के ख़्याल से ही अपने आपको

हटा लो। स्वभाव वश सब काम अच्छे हों, सब सोचना अच्छा हो और व्यवहार भी अच्छा हो। सत्कर्म, सद्विचार और सद्व्यवहार। जब ऐसे बन जाओगे तब चित्त की निरोधावस्था पैदा होगी।

❖ ❖ ❖ ❖

अभ्यासी ग़लती से समझने लगते हैं कि मोक्ष गति के पाने के लिए संसार का त्याग करना होगा, यह उनका भ्रम है। दुनियाँ भी रहेगी, कर्म भी रहेंगे और वातावरण भी रहेगा, सिर्फ़ भाव को बदलना है। हासिल (प्राप्त) ही हासिल करना है। थोड़े सुख को छोड़कर हमेशा–हमेशा की ज़िन्दगी मिलती है। दुनियाँ की थोड़ी सी चीज़ें छोड़ने से दुनियाँ की सभी चीज़ें मिल जाती हैं। संसार को मन से छोड़ने से संसार का स्वामी बन जाता है। यही सच्चा परमार्थ है।

❖ ❖ ❖ ❖

परमात्मा बड़ा दयालु है। उसकी दया हर जीव पर हर वक़्त होती रहती है, लेकिन यह बड़ी नाज़ुक (कोमल) है। किसी मुख़ालिफ़त (विरोध) को बरदाश्त (सहन) नहीं कर सकती है। अगर मन बीच में आ जाता है तो दया गुप्त हो जाती है। इसलिए दया के लिए हर वक़्त राज़ी–ब–रज़ा होना चाहिए।

जो मनुष्य अपना सच्चा उद्धार चाहते हैं उन्हें चाहिए कि :–

1) वक़्त के पूरे गुरु की खोज करें, उनकी शरण ग्रहण करें और उनके चरणों में दिन–दिन प्रीति बढ़ायें।

2) उनसे सुरत–शब्द–योग का अभ्यास और युक्ति मालूम करके पूर्ण विश्वास, प्रीति और प्रतीति के साथ अभ्यास करें।

3) सत्संग करें और सत्गुरु की शिक्षा पर चलें। इस तरह करने से आहिस्ता–आहिस्ता एक दिन उनकी सुरत कुल्ल मालिक सत्पुरुष दयाल के चरणों में पहुँच जायेगी और सच्चा उद्धार हो जायेगा।

❖ ❖ ❖ ❖

मन की चाल को देखता चलें। सच्चाई का विचार, भलाई का विचार, ईश्वर प्राप्ति का विचार, यह सब परमार्थी चालें हैं। इनके अतिरिक्त जितने विचार मन उठाता है वे सब संसारी हैं और बन्धन में डालने वाले हैं। ईर्ष्या राग–द्वेष कम होते जाते हैं। सब से प्यार तथा मित्रता का भाव उत्पन्न होता है। धन–सम्पत्ति, मान–बड़ाई, इन्द्रिय–भोग आदि की ओर से ध्यान हटता जाता है। पहले जिन संसारी वस्तुओं में बड़ा आनन्द आता था उनमें वह आनन्द अब नहीं आता। सुरत (Attention) जो सब तरफ बंटी हुई थी, सिमट–सिमट कर परमात्मा की ओर लगने लगती है। परमात्मा की इच्छा पर निर्भर रहता है यानी राज़ी–ब–रज़ा हो जाता है।

❖❖❖❖

मनुष्य में उतनी ही शक्तियाँ हैं जितनी परमात्मा में हैं। अन्तर यह है कि वे शक्तियाँ जीव में दबी हुई दशा में हैं, उनको उभारना चाहिए। संसार से निराश होकर जब हम सच्चे हृदय से परमात्मा को पुकारते हैं तो ऊपर से यानी मालिक़ की तरफ़ से शक्ति का संचार होने लगता है, धीरे–धीरे दबी हुई शक्तियाँ प्रकट होने लगती हैं। उस मनुष्य में इन्सान से देवताओं के गुण और फिर परमात्मा के गुण आ जाते हैं। अन्तर केवल मात्रा का रह जाता है, गुणों का नहीं।

मन को जिस बात की आदत पड़ गई है उस की वह याद दिलाता रहता है। किसी काम को छोड़ देने के बाद भी मन उसका ख़्याल करता रहता है। जिस प्रकार मिट्टी का बर्तन बन जाने के बाद भी कुम्हार का चाक चलता रहता है। चोर चोरी छोड़ दे लेकिन हेरा फेरी नहीं छोड़ता। कंदील का दीपक बुझ जाने के बाद भी उसमें शक्लें कुछ देर चक्कर लगाती रहती हैं। वैसे ही किसी आदत को छोड़ देने के बाद भी मन में उस आदत की याद चक्कर लगाती रहती है। लेकिन एक दिन आयेगा जब यह उसे छोड़ देगा। जब आत्मा को उस काम में रुचि ही नहीं रहेगी तो मन कब तक चक्कर काटेगा ? जब चिराग़ ही बुझ गया तो कंदील की शक्लें कब तक चलती रहेंगी ? ❑

प्रवचन परमसंत डॉ. करतार सिंहजी साहब

अपनी नित्य की दिनचर्या को ही उपासना का रूप बना देना चाहिए

कई लोग अपने काम में इतने व्यस्त रहते हैं, ईश्वर ने उन्हें ऐसे स्थानों पर रखा है कि जितना समय उनका मन चाहता है उतना समय अभ्यास में नहीं दे पाते हैं। इससे वे दुखित होते हैं। बहनें विशेषकर लिख भेजती हैं कि 'हमें साधना करने का समय नहीं मिलता है। सवेरे बच्चे स्कूल जाते हैं, उसके बाद पतिदेव दफ्तर जाते हैं, तत्पश्चात् घर के काम काज करना पड़ता है, खाना बनाना है, कपड़े धोने हैं, घर की सफाई करनी है या स्वयं भी नौकरी पर जाना है। इसी प्रकार सारा दिन निकल जाता है, परन्तु सन्ध्या के लिए, अभ्यास के लिए उपयुक्त समय नहीं मिल पाता।'

और लोग भी हैं, दुनियादारी में फँसे हुए हैं। 'फँसना' नहीं कहना चाहिए, ईश्वर ने उनको रखा ही ऐसे स्थान पर है। गुरुदेव ने ऐसे व्यक्तियों के लिए बहुत ही सरल उपाय बताया है। जिनको समय मिलता है परन्तु वे सन्ध्या के लिए प्रातः और सायंकाल समय पर और नियमपूर्वक नहीं बैठते है, वे प्रमादी हैं। वो इस श्रेणी में नहीं आते। ऐसे व्यक्ति क्षमा करें, वे पाप कर रहे हैं– ईश्वर के प्रति न सही, अपने प्रति तो करते ही हैं। जितना अधिकाधिक प्रभु का स्मरण किया जायेगा, प्रभु की याद की जायेगी उतना ही व्यक्ति को लाभ होगा। उस पर हम कोई कृपा नहीं करते, ये तो अपने ऊपर ही निज कृपा करते हैं।

भगवान कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं। पहले ज्ञान योग फिर भक्ति योग का उपदेश देते हैं। कहते हैं कि ये रास्ते भी कठिन लगते हैं तो सरल रास्ता बताता हूँ। यदि ध्यान से गीता का अध्ययन किया जाय तो मालूम होगा कि भगवान जो अपनी ओर से सरल रास्ता बता रहे हैं वह भी बहुत कठिन है। वे कहते हैं कि यदि कोई साधना नहीं कर सकता है तो जो कर्म करे उसे निष्काम भाव से करे। अर्थात् कर्म के फल के साथ

आसक्त न हो यानी मोह न रखे। कर्म फल की लालसा या कोई आशा न रखें। परन्तु वास्तव में ये भी तो नहीं होता हमसे।

गुरुदेव महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी ने उसी बात को दोहराया है कि ''आप सोचते हैं कि भगवान के दर्शन घर बार छोड़कर, जंगलों में जाकर होंगे, यह एक भूल है। एकान्त कभी–कभी सहायक होता है परन्तु हमेशा के लिए नहीं। हमारे भीतर तो इच्छाएं, अवगुण और संस्कार भरे हुए हैं। यदि हम घर में रहें तब या जंगलों में चले जायें तब भी मन तो वहीं पड़ा रहेगा। वहाँ जाकर भी वही विचार उठेंगे जो घर में उठते थे। तनिक सा फर्क पड़ सकता है इसमें कोई शक नहीं है। परन्तु जंगल में जाकर पूर्णतः मन निर्मल हो जाय, यह सम्भव नहीं है। उसके लिए काफी समय चाहिए, काफी साधना चाहिए।''

गुरुदेव फरमाते हैं कि मन का साधन करो, घर पर रहकर करो। यदि समय नहीं मिलता तो कोई बात नहीं। जो काम करो ईश्वर की हजूरी में, स्मृति में, ईश्वर के प्रति निष्काम भाव से, दूसरे की सेवा के रूप में करो, तथा कर्मफल के साथ आसक्ति न हो। आपने किसी को पाँच सौ रुपया दिया और मन में आशा रखते हैं कि वह व्यक्ति आपको सलाम करे, आपको हर समय धन्यवाद करे तो आपकी सेवा निष्फल हो गई। ये तो सौदेबाज़ी है, निष्काम कर्म नहीं है। सूरज सबको धूप देता है, किरणें, रश्मियाँ बाँटता है किन्तु वह किसी से आशा नहीं रखता है। जैसे सूर्य कर्म करता है वैसे कर्म करिए। इसी प्रकार जो सन्त होते हैं वे दीन होते हैं सबकी सेवा करते हैं। ज्ञानी हैं – गीता पढ़िये तो मालूम होगा कि उनमें भी वही लक्षण होते हैं, जो सन्यासी के हैं। सन्तों या ज्ञानियों का कर्म के साथ आसक्ति या बन्धन नहीं रहता, उनका मन स्वतन्त्र है। ''ब्रह्म ज्ञानी सदा निर्लेप''– उनमें दोषी वृत्तियाँ नहीं होतीं। उनको किसी कर्म के फल की आसक्ति, पाप या दोष नहीं लगता।

मीराजी कहती हैं कि मेरी चुनरी ऐसी रंग दो कि कोई दोष न रहे, कोई संस्कार न रहे। तो ब्रह्मज्ञानी या सन्त निष्काम भाव से कर्म करने वाला व्यक्ति है, उसका कोई दोष नहीं, उसका कोई संस्कार नहीं बनता। ऊपर भी बतलाया गया है कि जैसे सूर्य भगवान सबको सुख पहँचाते हैं, निरासक्त भाव से, यदि उसी भाव से कोई व्यक्ति कर्म करता है, कर्म

और कर्म के फल को ईश्वर के चरणों में अर्पित करता जाता है, रात को जब सोता है तो उसकी याद में ही – न कि स्वप्न देखता रहे कि अमुक के साथ मैंने भलाई की, अमुक के साथ बुराई की है – तो वह निष्काम कर्म कहलायेगा। इस प्रकार उस पर कुछ असर ही नहीं होता है जैसे 'जल में कमल अलेप'। कमल का फूल जल में रहता है, चारों ओर जल ही जल रहता है परन्तु जल की बूँद भी उस पर नहीं ठहरती है। परन्तु यह काम है बड़ा कठिन। गुरु महाराज कहा करते थे कि इस माया रूपी काजल की कोठरी में आकर कोई व्यक्ति यह कहे कि उसे कालौंच नहीं लगे, असम्भव है। वे कहते हैं कि हर काम करना तो यहीं रहकर होगा, कहीं भी चले जायेंगे पर माया क्या हमको छोड़ देगी ? घर में बैठें, दुकान पर जायें, दफ्तर में बैठें, स्कूल में जायें, जहाँ कहीं भी जायें यह माया तो रहेगी ही। इसलिए मन को ही बनाना–साधना होता है।

जिनके पास समय नहीं है वे गीता के कर्मयोग को अपनायें, निष्काम भाव से कर्म करें। भगवान विष्णु ने नारद जी को अपने एक सेवक के पास भेज दिया। आदेशानुसार नारद जी उनके पास गये। कुछ दिन रहे। देखा कि वह व्यक्ति सवेरे से शाम तक काम में इतना व्यस्त रहता है कि उसको भगवान की याद के लिए कोई समय नहीं मिलता। सुबह जब उठता है उस वक्त 'नारायण' कहता है और जब सोता है तब नारायण कहता है। नारद जी महान भक्त थे लेकिन उनमें सूक्ष्म अहंकार था। उन्हें बड़ा दुःख हुआ कि भगवान ने मुझे कहाँ भेज दिया। यहाँ नारायण का कोई नाम ही नहीं लेता, अपने मालिक की किसी को याद ही नहीं आती, ये भगवान ने मुझे कहाँ भेज दिया है।

वे भगवान के पास पहुँचे और बोले – ''भगवन्! आपने मेरे साथ ये क्या अन्याय किया ? उसे आप अपना भक्त बताते हैं और वो आपकी याद तक नहीं करता। केवल एक बार प्रातः और एक बार सोते समय 'नारायण' कहता है। यह आपकी कैसी पूजा है ?'' भगवान मुस्कुराये। ''हाँ, ठीक है इसका उत्तर बाद में देंगे, ज़रा आप एक काम करिये।'' एक तेल का कटोरा दे दिया, उसमें ऊपर तक तेल भर कर एक पुष्प उसके ऊपर रख दिया और कहा – ''इसे ले जाइये और पृथ्वी की परिक्रमा करिये परन्तु ध्यान रहे कि यह तेल गिरे नहीं।'' नारद जी ने कटोरा हाथ

में ले लिया और कहा– ''ठीक है, आज्ञा का पालन करूँगा।'' दस, बीस पचास कदम गये होंगे, ध्यान उस तरफ है कि कहीं तेल गिर न जाये। यदि तेल गिर गया तो भगवान के आदेश का पालन नहीं होगा।

अब उस concentration (एकाग्रता) में, मन की उस लगन में, नारद जी से भगवान के नाम की विस्मृति हो गई। पूर्ण ध्यान तेल की तरफ ही रहा। तब नारद जी की समझ में आया। वे भगवान के चरणों में लोट गये। ''हे प्रभु! यह काम मुझसे नहीं होगा।'' भगवान ने समझाया कि ''आप सुमिरन करते हैं इसलिए कि आपका मन हर समय मेरे चरणों में लगा रहे। आप तेल का कटोरा ले जाने में थोड़े समय में ही उलझ गये, काम नहीं कर सके और वो व्यक्ति सुबह से रात तक इतना व्यस्त रहता है कि मन किसी बुराई की तरफ जाता ही नहीं। और वो जो भी कर्म करता है, मेरे प्रति और मेरी उपासना के रूप में करता है।''

इस प्रकार के निष्काम भाव से कर्म करना चाहिए और इस तरह कर्म करना ही भक्ति का एक श्रेष्ठ साधन है। भगवान कितने दयालु हैं कि जैसी जिसकी भावना है, जैसी जिसकी वृत्ति है उसी प्रकार आप उसे साधना बतलाते हैं। इसीलिए मन में कभी निराश नहीं होना चाहिए कि समय का अभाव है। भोजन बना रहे हैं तो क्या, काम करते हुए उसी की याद में रहिए। खाना बना रहे हैं तो उसी के लिए। जब पतिदेव को भोजन परोसते हैं तो उन्हें ईश्वर का रूप समझ कर ऐसा करें। इसी प्रकार और जितने काम करते हैं, उसी की याद में, उसी का समझ कर, उसकी प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए करें, और आशा नहीं रखें। बड़ा कठिन काम है कि फल की आशा न रखकर हम काम करें। भीतर में अहंकार भरा हुआ है। हमारे प्रत्येक विचार में, प्रत्येक कर्म में, आशा छिपी हुई है। यदि कोई व्यक्ति हमारी आशा या इच्छा के अनुसार काम नहीं करता तो हमारे अहंकार पर ठोकर लगती है। हम क्रोधित हो जाते हैं, व्याकुल हो जाते हैं।

आप अपने कर्म में फल के साथ आसक्त न हों और मैं यह अपनी ओर से ही नहीं निवेदन करता हूँ, अपितु अनेकानेक महापुरुष बड़ी ही सरस भाषा में यही ज्ञान देते आये हैं। दूसरा भी कोई व्यक्ति यदि कुछ कर्म करे उसका जो फल हो (या प्रतिक्रिया) उसके साथ भी आसक्त नहीं

होना चाहिए। ये बहुत कठिन है। कोई आपके साथ बुरा करता है, गाली देता है, आप उसके साथ नेकी करते हैं और बदले में वह बुराई देता है तो भीतर में हृदय अग्नि की तरह जलता है। ये तो साधना नहीं है। भगवान कहते हैं कि अपने कर्म के फल के साथ आसक्ति न हो, दूसरे के कर्म का जो फल है उसके साथ भी आसक्त न हों। कौन ऐसा कर पायेगा ? वही जो सब रूपों में भगवान के दर्शन करेगा। मित्र के रूप में भी भगवान के दर्शन करेगा और प्रतिकूल भावना वाले व्यक्ति चाहे उसे शत्रु कहिए, चाहे जो भी कहिए, उसमें भी भगवान के दर्शन करेगा। शत्रु और मित्र दोनों को एक भाव से देखता हुआ निष्काम भाव से दोनों की एक जैसी सेवा करेगा। बड़ा कठिन है ये मैं मानता हूँ, मुझ से भी नहीं हो पाता। कोशिश करता हूँ परन्तु तब भी इसका असर होने लगता है।

साथ ही साथ यह भी अभ्यास करें कि प्रभु जो कुछ करते हैं वो हमारे हित में है और जिस परिस्थिति में, जिस काम पर उन्होंने रखा है, हम उन्हीं परिस्थिति में रहकर भगवान की उपासना करें– भक्ति द्वारा, ज्ञान द्वारा, सन्यास द्वारा, योग द्वारा, निष्काम भाव द्वारा– चाहे किसी भी पद्धति से हो, समर्पण भाव से करें। ये कभी मुख से नहीं निकलना चाहिए कि 'साहब अभी समय नहीं है, अभी आयु ही क्या हुई है, कोई टाइम नहीं मिलता है।' प्रत्येक क्षण प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ काम करता ही रहता है, कुछ विचार उठाता ही रहता है। वो कर्म, वो विचार, वो वाणी, प्रभु के प्रति उपासना का रूप लिए हुए हो। कुछ विशेष करने की ज़रूरत नहीं है, आँखे बन्द करने की भी ज़रूरत नहीं है, केवल आपका प्रत्येक कर्म उपासना का रूप लिए हो।

अनेक दार्शनिकों ने माना है – work is worship अर्थात् कर्म ही उपासना है। कर्म कब उपासना बनता है ? जब हम भगवान के आदेशानुसार निष्काम भाव से कर्म करते हैं और फल की कोई आशा नहीं रखते हैं। प्रत्येक व्यक्ति हर कर्म में, हर विचार में कोई न कोई आशा रखता है। यह मनुष्य की भावना होती है कि वह यह चाहता है कि संसार में प्रत्येक व्यक्ति उसकी आशा के अनुसार व्यवहार करे और एक भावना उसके अन्दर यह भी रहती है कि विश्व का सारा धन उसी का हो जाये, सारे सुख उसी को मिलें, और किसी को मिलें न मिलें। प्रायः यह सभी की

भावना होती है। जिस समय हमें यह समझ आ जायेगी कि प्रभु कहाँ नहीं है, कण-कण में वे ही हैं, सब प्राणियों में वे ही हैं और उनके साथ हम जो व्यवहार करते हैं वह सब ईश्वर के साथ करते हैं। और ईश्वर के उस रूप को हमें प्रसन्न करना है। उस रूप से चाहे कितना ही हमें विरोध मिले, हमारा कर्त्तव्य यह है कि हम उसे ईश्वर समझकर उसके साथ व्यवहार करें।

इस प्रकार के विचार-व्यवहार करते रहने से हमारा जीवन ही उपासनामय होता जायेगा। यदि जो कुछ भी गतिविधि करेंगे उसे ईश्वर के निमित्त, उसी की खुशी के लिए करेंगे परन्तु ऐसा करते हुए फल की इच्छा नहीं रखेंगे तो यह निष्काम कर्म योग की साधना को सफल बनायेगा।

गुरुदेव सबका कल्याण करें। ❑

शिक्षाप्रद प्रसंग

जाजलि ऋषि को एक दिन आकाशवाणी हुई कि सत्संग करना हो तो तुलाधार वैश्य के पास जाओ। जाजलि ऋषि तुलाधार के पास गये। तुलाधार उस समय दुकान पर काम कर रहे थे। जाजलि को देखकर उन्होंने पूछा कि 'क्या आकाशवाणी सुनकर आये हो? जाजलि ऋषि को बड़ा आश्चर्य हुआ कि एक व्यापारी वैश्य और साधना में इतनी पहुँच कि यह तो आकाशवाणी की बात भी जानता है। उन्होंने तुलाधार से पूछा कि 'तुम्हारा गुरु कौन है और तुम कौन सी पूजा करते हो?'

तुलाधार ने कहा- 'मेरा धन्धा मेरा गुरु है। मैं अपने तराजू की डंडी ठीक रखता हूँ, किसी को कम नहीं तोलता, बहुत नफ़ा नहीं लेता। मेरी दुकान पर आने वाला ग्राहक प्रभु का रूप है, ऐसा मानकर व्यवहार करता हूँ। तराजू की डंडी की तरह अपनी बुद्धी को भी ठीक रखता हूँ। टेढ़ी होने नहीं देता हूँ। अपने माता पिता को परमात्मा का स्वरूप मानकर उनकी सेवा करता हूँ। और धन्धा करते हुए भी मालिक को सतत् स्मरण करता रहता हूँ। यही सब मेरी पूजा है और इसी से मैंने सब कुछ हासिल किया है।'

प्राचीन मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र

इब्राहिम आदम

तपस्वी इब्राहिम आदम पहले राजा थे। परन्तु बाद में उन्होंने सब कुछ छोड़कर फकीरी ले ली थी। वे प्रभु से डरने वाले सत्यनिष्ठ व कठोर साधक थे। उनका धर्म प्रेम, ईश्वरानुराग और उनकी व्याकुलता अनुपम थी। उन्होंने बहुत से संतों का विशेषतः धर्माचार्य अबुहनीफ का सत्संग किया था। महर्षि जवनिद कहते हैं– ''इब्राहिम ज्ञान के उद्यान के समान हैं।''

इब्राहिम जब बल्ख के राजा थे तब एक दिन उन्होंने रात में सोते समय किसी की पद ध्वनि सुनी। पैरों की आहट इतनी तेज थी कि उससे सारी छत हिलने लगी। चौंककर उन्होंने पूछा– 'कौन है'? आने वाले ने कहा– ''डरो मत, मैं तुम्हारा शत्रु नहीं मित्र हूँ। मेरा ऊँट खो गया है उसे खोजने के लिये ही मैं यहाँ आया हूँ।'' इब्राहिम बोले– ''इतने ऊँचे महल में ऊँट कहाँ से आयेगा?'' आने वाले ने कहा ''अरे अबोध! तू भी इतने ऊँचे राजमहल में स्वर्ण सिंहासन पर बैठकर ईश्वर को खोजना चाहता है। मेरी बात से ही तुझे क्यों आश्चर्य हुआ?'' इतना कहकर वह अज्ञात व्यक्ति सहसा गुप्त हो गया। उसकी बातों का इब्राहिम पर बहुत असर पड़ा। उनके हृदय में अशांति की अग्नि प्रज्वलित हो उठी। शोक व चिंता ने उनके मन में घर कर लिया।

इतने में ही एक और घटना घटी। एक दिन वे अपने कर्मचारियों के साथ राजकाज संभाल रहे थे, इतने में एक तेजस्वी पुरुष वहाँ आ उपस्थित हुआ। किसी का भी साहस नहीं हुआ कि उससे कोई प्रश्न करे। उस तेजस्वी को देखकर सभी चित्रलिखित से हो गये। सीधे सिंहासन के पास आकर वह खड़ा हो गया।

इब्राहिम ने उससे पूछा– ''आप क्या चाहते हैं''?

''और कुछ नहीं, सिर्फ एक दिन इस मुसाफिरखाने में रहना चाहता हूँ।'' उत्तर मिला।

''यह मुसाफिरखाना नहीं राजभवन है'' इब्राहिम ने कहा।

''तुमसे पहले इस मकान में कौन रहता था ?'' उसने पूछा।

''मेरे पिता''

''उनसे पहले'' ?

''मेरे दादा''

''उनसे पहले'' ?

''उनके पिता''।

''जब मकान में नये–नये लोग आते रहे हैं और पुराने जाते रहे हैं तो यह मुसाफिर खाना नहीं तो क्या है ?'' इतना कहकर आगन्तुक जाने लगा। इब्राहिम ने उसके पीछे जाकर पूछा – ''आप कौन हैं ?''

''मैं हूँ खिजर'' (मुसलमान खिजर को एक अमर पैगम्बर मानते हैं जो केवल भाग्यवान पवित्र मनुष्य ही को दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं) इतना कहकर वह तेजस्वी पुरुष अदृष्य हो गया। अब तो इब्राहिम के हृदय में वैराग्य की पावक प्रज्वलित हो उठी। उन्हें संसार में क्षणभर भी चैन नहीं मालूम देता। एक दिन अपने नौकर को लेकर, घोड़े पर सवार होकर वे वन की ओर चल पड़े। वन में जाकर वे इधर–उधर भटकने लगे और नौकर से अलग पड़ गये। इतने में अकस्मात् कोई आवाज़ हुई– ''जागृत हो!'' इब्राहिम तो विह्वल होकर इधर–उधर देखने लगे पर बोलने वाला कोई दिखाई नहीं दिया। फिर भी दो बार वही आवाज सुनाई दी। राजा आश्चर्यचकित होकर देखते ही रह गये। चौथी बार सुनाई दिया– ''मृत्यु आकर तुझे जगावे उससे पहले जाग जा।''

ऐसी वैराग्य सूचक वाणी सुनकर उन्होंने दीर्घ निश्वास छोड़ा। मन संसार से विरक्त होने लगा और ज्यों–ज्यों संसार की माया दूर होने लगी त्यों–त्यों सत्य का प्रकाश प्रकट होने लगा। स्वर्ग का द्वार उनके लिए खुलने लगा और ईश्वरीय प्रकाश का उदय होने लगा। पश्चाताप से उनके नेत्रों में अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। वन का राजपथ छोड़कर वह एक ओर को चल पड़े। उधर उन्होंने एक रखवाले को देखा। वह फटे पुराने कपड़े पहने था, उसकी टोपी के भी चिथड़े हो गये थे। इब्राहिम ने अपने बहुमूल्य वस्त्रालंकार और रत्नजटित मुकुट उसे देकर उसके फटे पुराने

कपड़े स्वयं पहन लिए। वल्ख का राजा राजवेश छोड़कर मार्ग का भिखारी बन गया। इस प्रकार राज सिंहासन छोड़कर नीची धरती पर उतरने पर ही उनकी दृष्टि में देवलोक का प्रकाश पड़ा। इस भूमि का राज्य छोड़कर ही वे परलोक का अमर राज्य प्राप्त करने में समर्थ हुए। वन पर्वतों में वे पैदल भटकने लगे और अपने पूर्वकृत पापों के प्रायश्चित स्वरूप करुण रुदन करने लगे।

इस प्रकार कई दिनों तक भटकने के उपरांत निशापुर के पास की एक गुफा में उन्होंने वास किया। उस गुफा में नौ वर्ष तक एकांतवास करके उन्होंने अपने आंतरिक शत्रुओं को पराजित किया। वहाँ रहकर वे अपना पोषण किस प्रकार करते ? भूख लगने पर वे गुफा से बाहर आते और जंगल से लकड़ियाँ चुनकर उन्हें पास ही के निशापुर में बेचते। जो कुछ मिल जाता उसमें से आधा गरीबों को दे देते। आधे से अपनी क्षुधा निवृत्ति करते। शुक्रवार के दिन वे निशापुर की मसजिद में नमाज पढ़ने जाते। इस प्रकार नौ वर्ष बीत गये। अनेक बार गुफा में संकट आये, पर उनका रखवाला तो ईश्वर था। एक बार वे बर्फ के नीचे दब गये। दूसरी बार एक भयंकर अजगर से उनका सामना हो गया, परन्तु जिसकी भगवान रक्षा करता है उसका कौन बालबाँका भी कर सकता है।

ऐसा सुनने में आता है कि जब इब्राहिम राज्यपाठ छोड़कर वन में चले गये तो उन्हें एक धर्मपरायण पुरुष मिला। उसने इब्राहिम को प्रभु नाम के महामंत्र की दीक्षा दी। उसी नाम का वे जप करने लगे। थोड़े ही समय में तेजस्वी महात्मा खिजर से उनकी भेंट हुई। खिजर ने उन्हें बताया– ''जिसने तुम्हें मंत्र जाप की दीक्षा दी थी वह मेरा भाई अलियास था।'' उसके बाद खिजर के साथ उनकी धर्म और ईश्वर सम्बन्धी अनेक बातें हुईं। महापुरुष खिजर के प्रभाव से उनके जीवन में बहुत सुधार हुआ। एक प्रकार से खिजर उनके गुरु थे। उन्हीं के उपदेश से उन्होंने वैराग्य धारण किया था।

चौदह वर्ष तक विभिन्न स्थानों और जंगलों में ईश्वरोपासना में समय बिताकर वे मक्का गये। उनके आने का समाचार सुनकर मक्कावासियों ने उनके स्वागत की तैयारियाँ आरम्भ की। इसकी खबर पाकर इब्राहिम ने व्यापारियों के एक काफिले के साथ इस प्रकार मक्का में प्रवेश किया

कि कोई उन्हें पहचान न सका।

एक मक्कावासी खोजते–खोजते उसी काफिले में आया। उसने स्वयं इब्राहिम ही से पूछा– ''आपने तपस्वी इब्राहिम को कहीं देखा ? मक्का निवासी उनका स्वागत सत्कार करना चाहते हैं।''

वे बोले– ''अरे भोले मक्का निवासियों! उस पाखण्डी इब्राहिम से तुम्हें क्या काम ? उससे तुम्हें क्या लाभ होगा ?''

इतना सुनते ही वह नगर निवासी क्रोधित हो उठा। इब्राहिम को खरी खोटी सुनाकर उसने कहा– ''नादान! उस महापुरुष को पाखण्डी बताने वाला तू स्वयं कोई पाखण्डी दीखता है।''

''हाँ मैं अवश्य ही पाखण्डी हूँ।'' शांत स्वर में उन्होंने उत्तर दिया। फिर वे अपने मन को सम्बोधित करके बोले– ''रे दुष्ट मन! तुझे आज ठीक दण्ड मिला है।'' और ईश्वर को अनेक धन्यवाद देने लगे। उनकी ऐसी मनोवृत्ति देखकर वह नागरिक समझ गया कि हो न हो यही महात्मा इब्राहिम हैं। वह रोकर उनके चरणों में गिर पड़ा और बार–बार क्षमा माँगने लगा। पर महात्मा ने उससे हँस कर कहा – ''तुमने तो भाई ठीक ही कहा था। मैं खुद ही जानता हूँ कि मेरा मन कितना पाखण्डी है।''

मक्का में रहकर उन्होंने बहुत से तपस्वियों का समागम किया। वहाँ भी वे अपने परिश्रम से निर्वाह किया करते। जंगल से लकड़ियाँ अथवा शाक सब्जी ले आते और उन्हें बेच कर पेट पालते। राजपाठ छोड़ते समय वे अपनी गृहस्थी में एक छोटा पुत्र छोड़ आये थे। बड़ा होने पर वह अपनी माता के साथ मक्का की यात्रा के लिए आया। इब्राहिम का नियम था कि वे सबेरे ही जंगल में चले जाते और शाम को मक्का लौटते, लकड़ियाँ बेचते, खुराक खरीदते, गरीबों को भिक्षा देते, शाम की नमाज पढ़ते और फिर खुद खाते। कई बार आटा खरीद कर रोटी बनाते, गरीबों को खिलाते और खुद खाते। मक्का में आकर पुत्र ने देखा, पिता सिर पर लकड़ियों का भार लिए आ रहे हैं। यह देखकर वह व्यथित होकर रोने लगा। अपने स्वामी की यह दीन दशा देखकर रानी भी रो पड़ी। काबा के समीप ही पिता पुत्र का मिलन हुआ था। इब्राहिम अपने पुत्र से प्रेमपूर्वक मिले। पुत्र भी वहीं मक्का में रहने लगा। कुछ काल बीतने पर उसका वहीं देहान्त हो गया।

एक रात को इब्राहिम का एक साथी बहुत बीमार हो गया। सर्दी की रात, बोटी–बोटी काँप रही थी और घास के उस झोंपड़े के दरवाजे में किवाड़ भी नहीं थे। रोगी को सर्दी से बचाने के लिए इब्राहिम रात भर दरवाजा रोककर खड़े रहे।

एक दूसरे ने कहा –''महर्षि इब्राहिम के साथ मैं मुसाफिरी में था। मार्ग में मैं बेहद बीमार हो गया। अपना सर्वस्व बेचकर उन्होंने मेरी सेवा–सुश्रुषा की, अपना सब कुछ समाप्त होने पर मेरा खच्चर बेच दिया। चेत होने पर जब मैंने खच्चर के बिक जाने पर इस बात का दुःख प्रदर्शित किया कि रास्ता कैसे कटेगा तो उन्होंने कहा– ''मेरे कंधे पर बैठ कर चलना।'' उन्होंने मुझे तीन दिन तक अपने कंधे पर बैठाकर मुसाफिरी की।

महात्मा इब्राहिम जंगल के निर्जन प्रदेशों में रहते थे। वहाँ एक बार यह घटना घटी। एक दिन उन्हें खाना नहीं मिला। ईश्वर को धन्यवाद देकर वे सारी रात ईश्वरोपासना में लीन रहे। दूसरा दिन भी बिना खाये और प्रभु भजन में बीत गया और इसी प्रकार सात दिन और बीत गये। भूख के कारण उनका शरीर सर्वथा अशक्त हो गया, तो वे बोले, 'हे प्रभो! अब कुछ खाने को मिल जाये तो.....'', इतना कहते ही वहाँ एक युवक आ उपस्थित हुआ। और उन्हें सम्मानपूर्वक अपने घर ले गया। उसे यह जानकर अपार हर्ष हुआ कि उसके अतिथि महात्मा इब्राहिम हैं। प्रसन्न होकर उसने कहा–''ऋषिवर! आपके शुभागमन से मैं कृत–कृत हो गया। मेरा सारा धन आपके चरणों में अर्पित है। मैं आपका किंकर होकर रहूँगा।''

उत्तर में इब्राहिम बोले ''भाई तुमने मुझे जो देने का विचार किया है, वह मैं तुम्हें वापस सौंपता हूँ और मुझे अब आज्ञा दो, मैं अपने स्थान को लौट जाऊँ। हे पाक परवरदिगार खुदा! मेरी तो बस इतनी ही इच्छा है कि खाने को कुछ मिल जाये। मुझे तो रोटी चाहिए, इतने धन का लालच मुझे क्यों देते हो।''

एक बार एक धनवान हजार मुद्रा की थैली लेकर उनके पास आया और उसे स्वीकार करने की प्रार्थना की। उन्होंने कहा ''मैं गरीब की एक पाई भी लेना नहीं चाहता।''

धनवान ने कहा ''मैं तो गरीब नहीं धनवान हूँ।''

वे बोले – ''पर तुम्हें तो अभी और धन की लालसा बनी हुई है।''

धनवान के हाँ कहने पर उन्होंने कहा– ''धनवान होने पर भी जिसकी धनेच्छा दूर नहीं हुई है, उसे मैं सबसे अधिक गरीब समझता हूँ।''

कहा जाता है कि एक बार महात्मा इब्राहिम लगातार 40 दिन तक स्वस्थ चित्त से प्रभु प्रार्थना से वंचित रह गये। इस बात से उनका हृदय अन्तर्वेदना से व्यथित हो उठा। कारण सोचने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि बसरा में उन्होंने एक आदमी को अपना कहकर एक फल खिलाया था, जो वास्तव में उनका नहीं था। इसी पाप से उनका मन अस्वस्थ हो गया और प्रार्थनाकाल में वह अस्थिर रहने लगा। वे बसरा गये। फल के मालिक से उस फल की बक्शीश माँगकर उन्होंने उसे हलाल करवाया, तब उनके मन को शान्ति हुई।

एक बार महात्मा इब्राहिम ने रास्ते में एक मूर्छित शराबी को देखा। वह धूलि–धूसरित हो रहा था, कै से उसका मुँह गंदा हो रहा था और उस पर मक्खियाँ भिनभिना रही थी। इब्राहिम ने पड़ोस से पानी लाकर उसका मुँह धोया और कहा– ''अरे भाई जिस मुख से प्रभु का नाम जपना चाहिए, उसे तू इतना गन्दा रखता है।'' होश में आने पर जब शराबी ने लोगों से ये सब बात सुनी तो उसे बड़ा पश्चाताप हुआ और उसने उसी समय से सदा के लिए शराब छोड़ दी। उस घटना के एक दिन बाद इब्राहिम को ईश्वरीय वाणी सुनाई दी –''इब्राहिम तूने तो एक आदमी का मुँह ही धोया है, पर मैं तो तेरे अन्तःकरण को प्रतिदिन धोता रहता हूँ।''

एक बार वे सड़क पर चले जा रहे थे। उन्हें देखकर चौकीदार सिपाही ने पूछा– ''तू कौन है'' ? उन्होंने जवाब दिया– ''गुलाम''

सिपाही ने फिर पूछा– ''कहाँ रहता है'', ''कब्रिस्तान में''।

इस उत्तर को उपहास समझकर सिपाही ने उनके दो चार कोड़े लगा दिए। किंतु बाद में जब उसे मालूम हुआ कि वे तो महात्मा इब्राहिम हैं तो उसने चरणों में गिरकर क्षमा प्रार्थना की।

महात्मा बोले– ''तेरे कार्य से तो मुझे लाभ ही होगा। मैं तो तुम्हारे भले की ही कामना करूँगा।'' आगे अपने उस उत्तर को समझाते हुए उन्होंने कहा –''भाई! सारे मनुष्य प्रभु के दास हैं, मैं भी उसी का दास

हूँ, और उन सब गुलामों का अंतिम घर तो एक कब्रिस्तान ही है, मैंने इसमें क्या असत्य कहा।''

एक बार वे नाव में बैठे थे। उनके पास ही एक दुष्ट मुसाफिर बैठा था। उसने उनका गला पकड़कर उन्हें पानी में ढकेल दिया। डूबते–तैरते वे किनारे लगे, तो भी उनके चेहरे के भाव क्रोध में न बदले अथवा अप्रसन्नता नाम मात्र की भी नहीं थी।

एक फकीर को अपनी फकीरी पर दुखी देखकर उन्होंने कहा– ''क्यों भाई, फकीरी तुम्हें मुफ्त में मिली है क्या?''

उसने पूछा–''तो क्या फकीरी कहीं मोल बिकती है।''

महात्मा ने कहा– ''हाँ, भाई मैंने तो बल्ख का राज देकर फकीरी ली है।''

एक दिन किसी ने उनसे पूछा– ''राजा होकर भी तुमने अपना इतना बड़ा राज्य छोड़ दिया, ऐसी कौन सी विपत्ति आ पड़ी थी।''

उन्होंने उत्तर दिया– ''भाई एक दिन मैंने शीशे में देखा, उसमें मेरे महल के स्थान पर श्मशान का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। उस शमशान में मैं अकेला था, कोई बन्धु सहोदर साथ न था। यात्रा के लिए सामने एक बहुत लम्बा मार्ग था, पर मेरे पास यात्रा की कोई सामग्री नहीं थी। पीछे मैंने एक परम तेजस्वी न्यायाधीश को सिंहासनासीन देखा। अपने बचाव की अनेक दलीलें करने पर भी मेरी एक न चली। राज्य के प्रति मेरे मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ और सब कुछ त्याग कर मैंने फकीरी ले ली।''

एक दिन एक व्यक्ति ने उनसे कहा– ''महात्मन्! मैंने बहुत से पाप किये हैं। मुझे ऐसा मार्ग बताइये जिस पर चलकर मैं अपना भला कर सकूँ।''

इब्राहिम बोले– ''जब कभी तुमसे पाप बन पड़े, ईश्वर का दिया हुआ अन्न मत ग्रहण करो।''

वह व्यक्ति बोला– ''ईश्वर ही तो सबकी जीविका चलाता है, उसे छोड़कर कहाँ जाऊँ?''

इब्राहिम ने कहा– ''यदि तू यह जानता है तो फिर उस एकमात्र अन्नदाता की आज्ञा के विरुद्ध आचरण ही क्यों करता है? उस राजाओं के राजा की आज्ञा के विरुद्ध कुछ करना ही है तो उसके राज्य के बाहर

जाकर ही करना चाहिए। या तो उसके दिए हुए अन्न–फल छोड़ देना चाहिए अथवा प्रभु के राज्य में रहकर पाप करना छोड़ देना चाहिए।''

व्यक्ति ने पूछा– ''परन्तु ईश्वर का राज्य छोड़कर जाऊँ भी कहाँ ? उस प्रभु का राज्य तो यत्र–तत्र सर्वत्र है।''

इब्राहिम बोले– ''तो फिर उसके राज्य में रहकर उसी की आज्ञा को भंग करना कैसे शोभा देगा ? फिर भी जो पाप करना ही हो तो ऐसी जगह कर जहाँ ईश्वर तुझे नहीं देखता हो।''

वह व्यक्ति– ''कभी ऐसा हो सकता है ? प्रभु तो सर्वज्ञ और सर्वव्यापक हैं।''

इब्राहिम– ''तब तो यह सर्वथा अनुचित है कि उसी के राज्य में रहकर उसकी आजीविका खाकर उसी की आँखों के आगे, उसकी आज्ञा के विरुद्ध पापाचरण किया जाय। खैर, एक काम तो करना कि जब मौत आवे तो कहना घड़ी भर ठहर मैं अपने किये का पछतावा कर लूँ।''

वह व्यक्ति– ''कभी ऐसा हो सकता है ? मौत तो एक पल का भी समय नहीं देती।''

इब्राहिम– ''ऐसा है तो अभी से पश्चाताप आरम्भ कर दे।''

व्यक्ति– ''ऐसा तो मैं नहीं कर सकूँगा।''

इब्राहिम– ''तो फिर न्यायाधीश के आगे तू क्या जवाब देगा ? वह भी अभी से सोच रख, जिससे तेरी पापात्मा को नरक में आने से इन्कार कर दे।''

व्यक्ति– ''ना, ना यह तो मैं कैसे कहूँगा। वे तो जबरन पकड़ कर ले जायेंगे।''

इब्राहिम– ''तो फिर भविष्य में पाप न करने का आज ही से निश्चय कर।''

यह उपदेश सुनकर वह व्यक्ति अपने किये का पछतावा करता हुआ पाप रहित जीवन व्यतीत करने लगा।

एक मनुष्य ने एक बार इब्राहिम से पूछा– ''महात्मन्! आप अपने साथ स्त्री को क्यूँ नहीं रखते ?'' उन्होंने उत्तर दिया – ''कौन सी स्त्री मेरे जैसे अन्न वस्त्र विहीन व्यक्ति के साथ रहेगी ? मेरा वश चले तो मैं इस शरीर को भी छोड़ दूँ, फिर एक दूसरे शरीर का भार मैं क्यूँ उठाऊँ ?

अपनी स्वतन्त्रता को खोकर दूसरे की पराधीनता का बोझ उठाना तो दोनों की दुर्दशा करना होगा।''

एक बार किसी ने उनसे पूछा– ''मैं रोज़ प्रभु की प्रार्थना करता हूँ, फिर भी वह मेरी बात क्यों नहीं सुनता?''

उन्होंने उत्तर दिया– ''जीभ से प्रार्थना बोल देने और सिर झुकाने से तो कुछ नहीं होता। प्रार्थना एकाग्रतापूर्वक होनी चाहिए। उसके प्रेरित महात्माओं को जानकर भी उनके बताए हुये मार्ग पर नहीं चलता। तू ईश्वर के प्रकाश, पानी और हवा आदि के दान का, प्रभु भक्तों की संगति का मुँह से बखान तो करता है पर उस रास्ते पर स्वयं कितना चलता है? पापियों के लिए तो नरक ही है, यह जानकर भी उससे छूटने का तू उपाय नहीं करता। यह जानकर भी कि अवगुण और शैतान तेरे परम शत्रु हैं, तू उन्हीं से मैत्री जोड़ता है। यह जानकर भी कि मौत सिर पर सवार है, तू उसका सामना करने की तैयारी नहीं करता। तूने स्वयं अपने हाथों अपने माँ, बाप, मित्र और बालकों को कब्र में सुलाया है फिर भी इस अनित्य संसार से शिक्षा ग्रहण क्यों नहीं करता, तू खुद पाप–प्रपंच में लीन रहता है, फिर भी दूसरों के दोष खोजता रहता है। अब कह तेरे सरीखे आदमी की बात भगवान कैसे सुने?''

उपदेश वचन

1. एक प्रभु का सदैव स्मरण रखो, मनुष्यों की बातें रहने दो।
2. तुमने धन, सद्गुणादि को कैद कर रखा है, दान, भजनादि के लिये उन्हें मुक्त करो और जीभ, अज्ञान, लोभ, मोहादि जो स्वतंत्र हैं उन्हें कैद करो।
3. इस संसार की मुसाफिरी में मैं सम्पत्ति के प्रदेशों में कृतज्ञता के वाहन का, पूजन अर्चन के प्रदेशों में प्रभु प्रेम के वाहन का, विपत्ति के प्रदेशों में सहनशीलता के वाहन का और पाप के प्रदेशों में प्रायश्चित के वाहन का उपयोग करता हूँ।

❑

राम संदेश के नियम

1. आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार-शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम सन्देश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।
2. राम-सन्देश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट-छाँट करने अथवा छापने या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।
3. राम सन्देश का वर्ष जनवरी में आरम्भ होता है। वार्षिक चन्दा 20 (बीस) रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। चन्दा दशहरा भंडारों में या मैनेजर, राम संदेश को, 9-रामाकृष्णा कॉलोनी, जी. टी. रोड, ग़ाजियाबाद (उ.प्र.) 201009 के पते पर दिसम्बर के अंत तक अवश्य भिजवा दें।
4. राम सन्देश डाक द्वारा नहीं भेजा जाता है। इसका वितरण भंडारों पर ही किया जाता है। कृपया अपनी प्रति लेना न भूलें।

राम संदेश

रजि. ऑफिस

9 – रामाकृष्णा कॉलोनी, जी.टी. रोड,
गाज़ियाबाद – 201009

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

मुद्रण : अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी-66, सैक्टर-6, नोएडा-201301